Volume-7, No. 1 Feb.-2020, pp. Hin.37-38

प्राचीन भारत में न्याय की संकल्पना भूमिका

मिस. प्रियंका सिंह, रिसर्च स्कालर
आर.जी.पी.जी. कालिज मेरठ उत्तर–प्रदेश भारत।
चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ उत्तर–प्रदेश

न्याय की संकल्पना प्राचीन काल से ही राजनीति चिन्तन का महत्वपूर्ण विषय रही है। परन्तु आधुनिक युग आते आते इनमें मौलिक परिवर्तन आ गया है। प्राचीन भारत में समुचित प्रशासन के लिए न्यायिक प्रशासन अनिवार्य था। पश्चिमी परंम्परा के अर्न्तगत न्याय के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए मुख्यतः न्याय परायण व्यक्ति, अर्थात सच्चरित्र मनुष्यो के गुणो पर विचार किया जाता था। राज्यो में समुचित प्रशासन के लिए न्यायिक प्रशासन अनिवार्य था। नारद व बृहस्पति स्मृति से पता चलता है कि उस समय अनेक सरकारी व पंचायती अदालते न्यायदान करती थी। न्याय की संकल्पना की अवधारणा के अर्न्तगत इस बात की तलाश की जाती थी कि जो व्यक्ति न्याय की ओर प्रेरित करते है। भारतीय पंरम्परा में भी मनुष्य के धर्म को प्रमुखता दी जाती थी। इन दोनो पंरम्पराओं के साथ यह मान्यता जुडी थी कि यदि सब व्यक्ति अपने–अपने कर्तव्य का पालन करेगें तो समाज व्यवस्था अपने आप न्याय पूर्ण होगी।

मुख्य शब्द– न्याय की संकल्पना, मनु का न्याय प्रशासन, स्मृतियां, शुक्र का न्याय।

प्राचीन भारत में न्याय प्रशासन की संकल्पना का विकास क्रम प्रचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक इस प्रकार रहा।

मनु का न्याय प्रशासन

प्राचीन भारत में न्याय प्रशासन की संकल्पना की शुरूआत मनु के न्याय प्रशासन से हुई है। मनुस्मृति में राजा ने न्याय पूर्ण आचरण पर बल दिया था। दण्ड को न्याय का संस्थापक माना गया है। लोग दण्ड के कारण ही स्थिर रहते है। राजा का कर्तव्य है कि वह देश काल अपराध की गुरूता आदि पर विचार करके अपराधियों को दण्ड दे। दण्डशक्ति के बल पर ही राजा न्याय कर सकता है। मनु ने धर्म अर्थात कानून के स्त्रोतो में वेदों को सर्वोपरि स्थान दिया है और बाद में स्मृतियों ने सज्जनों के आचार व स्वसन्तोष को गिनाया है। न्याय की व्यवस्था देते हुए मनु स्मृति का उल्लेख है कि विभिन्न प्रकार के मुकदमो अथवा विवादों को यथा सम्भंव राजा को ही स्वंय फैसला करना चाहिए। अथवा उसके इस कार्य के लिए किसी ब्राहमण को नियुक्त किया जाना चाहिए। मनु के अनुसार राज्य आचरण के धर्म सम्मत मापदण्डों के अनुपालन को सुनिश्चित करके समाज में न्याय को प्रतिष्ठित करता है।

शुक्र का न्याय प्रशासन– शुक्र ने न्याय प्रकिया पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उनके अनुसार धर्मशास्त्रों, जातियों, प्रदेश और श्रेणियों के चलन तथा राजाओं को राज्य के कानून समझने चाहिए। कानूनो का सम्पूर्ण रूप से पालन हो इसका अन्तिम उत्तरदायित्व राजा का ही है। वह दण्ड नीति का धारक है क्योकि वह शक्तिशाली होता है। समस्त धर्मों का एक मात्र रक्षक है और जो राजा दण्ड नीति का समुचित रूप से पालन नही करता अर्थात दण्डनीय को दण्ड नही देता है। दण्ड के अयोग्य को दण्ड देता है तथा अनावश्यक रूप से दण्ड का अभ्यासी होता है। उसका क्षय अवश्यम्भावी होता है। और वही लोग उस राजा का परित्याग कर देते है। और अपनी प्रजा को अधिक दण्ड देने से राजा का कल्याण नही हो सकता है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि शुक्र नीतिकार उन सब सम्भांवित कृत्यों को राजा से कराने के पक्ष में रहे है जिनके भय मात्र से प्रजा में अपराधिक प्रवृत्ति को बढावा न मिल सके तथा प्रजा राजाज्ञों के उल्लंघन में अत्यधिक भय का अनुभव करने लगे। पराधीन व असहाय व्यक्तियों पर कठोर वचन से दण्ड देने पर प्रतिबन्ध लगाकर महर्षि शुक्र ने जहाँ एक ओर नैतिकता का आश्रय लिया वही दूसरी ओर गरीब एवं असहाय व्यक्ति के प्रति पूर्ण सहानुभूति का परिचय दिया है।

कामन्दक का न्याय प्रशासन– कामन्दक के कथनानुसार राज्यों के समुचित प्रशासन के लिए न्यायिक प्रशासन अनिवार्य था। नारद एंव बृहस्पति स्मृति से यह पता चलता है कि उस समय अनेक सरकारी,पंचायती अदालतें न्यायदान करती थी। गांव के विवादो का निर्णय करना ग्राम सभा का उत्तरदायित्व था। ग्राम सभा द्वारा निर्णय देने में मामला क्रमशः न्यायालय में जाता था। ये सभी सभाएं

राजा द्वारा नियंत्रित होती थी। कामन्दक ने कहा कि राजा न्याय का प्रधान था फलतः उसकी न्यायिक सक्रियता अनिवार्य थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि राज्य में न्याय व्यवस्था का बड़ा महत्व था प्रशासन के अर्न्तगत न्याय व्यवस्था की ओर यथावश्यक ध्यान भी दिया जाना चाहिए। प्राचीन भारतीय विचारकों के द्वारा दण्ड और धर्म का एकीकरण भी किया गया क्योंकि धर्म दण्ड पर आधारित था और दण्ड न्याय व्यवस्था पर। सक्षेंप में हम यह कह सकते है कि धर्म दण्ड और व्यवहार अन्यायोश्रित माने गये है। कामान्दकीय नीतिसार में विधिवत न्याय पर तो पूरा बल दिया गया है। तथापि न्यायिक प्रक्रिया में यह मौन ग्रन्थ है।

कौटिल्य का न्याय प्रशासन– न्याय के महत्व को कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रथम तथा तीसरे अध्याय में भी रेखाकिंत किया है जहाँ वह कहता है कि समुचित न्याय व्यवस्था के अभाव में मतस्य न्याय व्याप्त हो जाता है। मतस्य न्याय के स्थान पर धर्म सम्मत एवं समुचित व्यवस्था की स्थापना राजा का प्रमुख उद्देश्य है। और इसी हेतु प्रजा, राजा को कर देती है, कि राजा प्रजा की रक्षा करेगा, आचार्य कौटिल्य का यह मत है कि प्रत्येक मनुष्य को स्वधर्म का पालन करना चाहिए। कौटिल्य ने न्याय व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा को माना है। कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित न्याय व्यवस्था त्वरित उचित एवं न्यायिक विश्वसनीयता को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। कौटिल्य ने न्याय व्यवस्था के अर्न्तगत दोषी न्यायाधीशों के लिए दण्ड की व्यवस्था करके जनसाधारण की दृष्टि में न्याय प्रशासन के विश्लेषण का स्वरूप व्यवहारिक है। न्याय व्यवस्था का इतना गहन व विस्तृत अध्ययन विवेचन कौटिल्य से पूर्व किसी अन्य चिन्तक ने प्रस्तुत नही किया है।

याज्ञवलक्य का न्याय प्रशासन– याज्ञवलक्य स्मृति में राजा के न्याय पूर्ण आचरण पर बल दिया गया है। दण्ड को न्याय का व्यवस्थापक माना गया है। लोग दण्ड के ही कारण स्थिर रहते हैं। राजा का कर्तव्य है कि वह देश काल अपराध की गुरूता आदि पर विचार करके अपराधियों को दण्डित करें। दण्ड शक्ति के बल पर ही राजा राज्य करता है। दण्ड पुरूष है जिसके शासनाधीन होने से ग्रन्थ व्यक्ति नारीसम है। प्रजा का रक्षक दण्ड ही है। समुचित दण्ड व्यवस्था के अभाव में सर्वत्र अराजकता और मतस्य न्याय का बोलबाला हो जायेगा। जो राजा दण्ड का शास्त्रानुसार यथा योग्य प्रयोग करते है। वह त्रिवर्ग से समृद्धि पूर्ण होता है। याज्ञवलक्य स्मृति में यह व्यवस्था की गई है कि राजा दुष्टों को दण्डित करे। यह कहा गया है कि लोभी और चंचलबुद्वि वाला राजा न्यायपूर्वक दण्ड का प्रयोग नही कर सकता शास्त्रानुसार दण्ड का प्रयोग करने वाला राजा देवता सम है। जिनकी यश पताका चारो दिशाओं में फहराती है। विधिपूर्वक न्याय करने से राजा स्वर्ग का और यश का भागी बनता है।

उपर्युक्तविवरण से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान न्याय व्यवस्था का प्रारूप जन्म ही प्राचीन भारतीय सामाजिक न्याय व्यवस्था के गर्भ से ही हुआ है। पारिस्थिकीय परिवर्तन के परिणाम स्वरूप न्याय व्यवस्था के दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक हुआ है। लेकिन वर्तमान न्याय व्यवस्था का आधार प्राचीन ही है।

सन्दर्भ सूची–

1. डा. त्रिपाठी, हरिहरनाथ, प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन, दिल्लीः वाराणसीः पटना।
2. डा. आयुर्वेदालंकार, कृष्णकुमार, प्राचीन भारत का संविधान तथा न्याय व्यवस्था, राष्ट्रीय सस्कृत सस्थान, मानित विश्वविद्वालयः नवदेहली।
3. मिश्र, कौशल किशोर मनु स्मृति में राज्य और सुशासन, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, यू0पी0 2012।
4. डा0 विप्लवं, शुक्र नीति मे राजनीतिक विचार, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, यू0पी0 2015।
5. मिश्र, कौशल किशोर कामान्दकीय नीतिसार में राज्य व्यवस्था एवं सुशासन, राहुल पब्लिशिग हाउस, मेरठ, यू0पी0 2012।